ध्यान और वास्तविक धर्म

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती जी

ध्यान और वास्तविक धर्म

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिला: सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org

www.oshofragrance.org

+91 7988229565
+91 7988969660
+91 7015800931

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तिका बहुत ही रोचक है। स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती जी ने साधकों के ध्यान, मनौविज्ञान और धर्म के वास्तविक स्वरुप के विषय में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर अत्यंत सरस व सरल ढंग से दिए हैं।

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती जी स्वयं अध्यात्म के शिखर पुरुष हैं, ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हैं, धर्म के अनेक मार्गों से गुजर कर भगवत्ता को उपलब्ध हुए हैं। आप मेडिकल डाक्टर भी रहे हैं। इसलिए आपके उपदेशों में अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय है एवं जीवन के सभी रंगों की झलक है। प्रत्येक प्रकार का व्यक्ति आपसे मार्गदर्शन पाकर आत्म संतुष्टि अनुभव करता है।

उनकी वाणी का व्यापक प्रसार करने हेतू लघु पुस्तिकाओं का प्रकाशन प्रारंभ किया जा रहा है। आशा है इस पुस्तिका को पढ़कर अनेक लोग लाभान्वित होगें।

– मस्तो बाबा
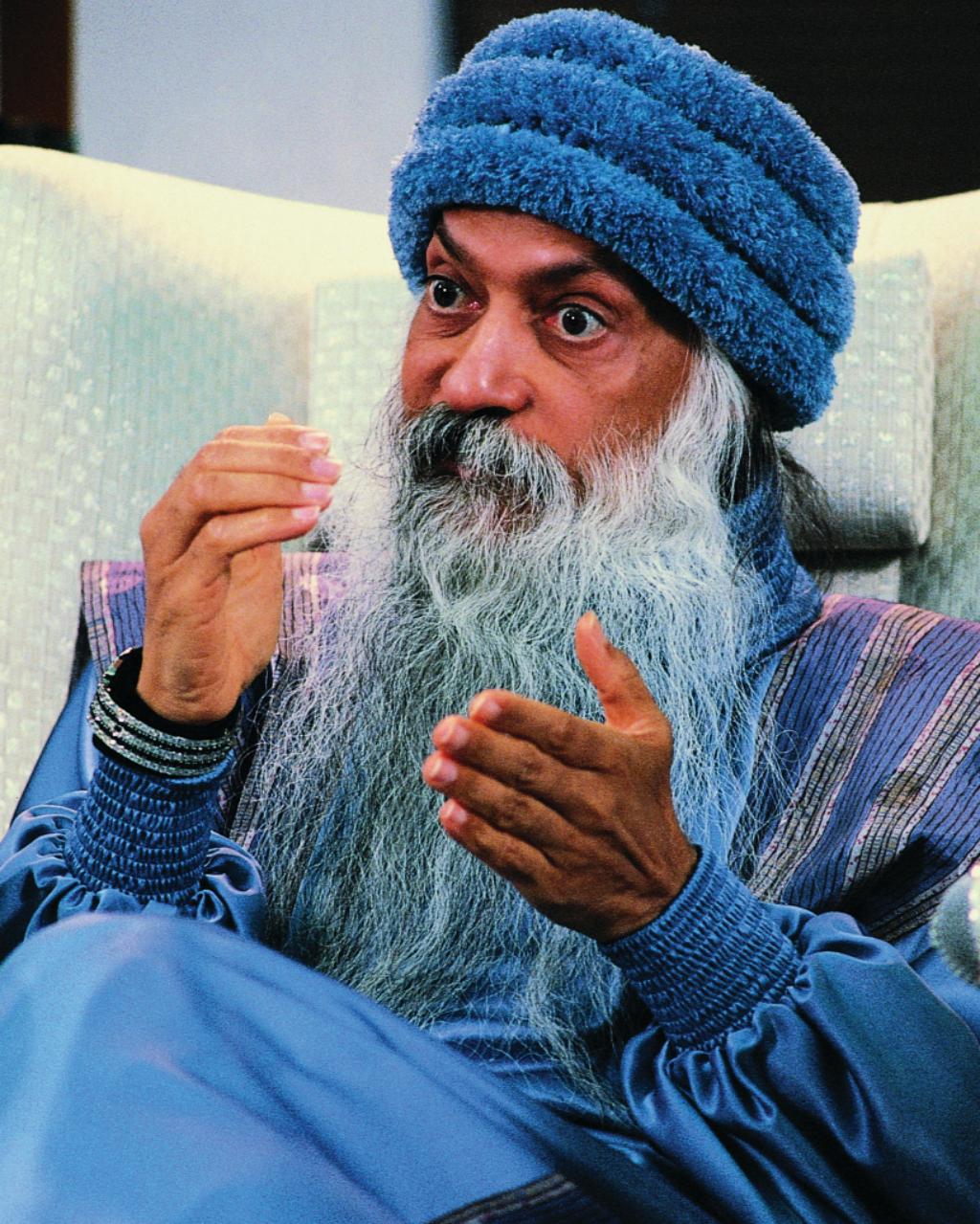
प्रश्नसार

1. ध्यान की जरूरत क्या है?
2. व्यस्त जिंदगी में प्रभु की खोज
3. जादू का खिलौना
4. वास्तविक धर्म क्या है?

ध्यान की जरूरत क्या है?

प्रश्न–गुरुदेवजी, दुनिया में इतनी पीड़ाएं और परेशानियां हैं...गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, चलाकी, राजनीति व शोषण हैं। चोरी-गुण्डागर्दी, हिंसा, आतंक और युद्ध की विभीषिका है। क्या इन सारी मुसीबतों के रहते हुए अपनी शांति की तलाश में संलग्न होना, ध्यान-समाधि में डूबना, भजन-कीर्तन करना स्वार्थ-सा प्रतीत नहीं होता?

अभी यहां मा ओशो प्रिया कीर्तन करा रही थीं– 'गोविन्द के गुण गाओ, साधो गोविन्द के गुण गाओ।' जब तक आदर्श राम-राज्य स्थापित न हो जाए, तब तक धर्म-साधना और प्रभु के गुण-गाना क्या संभव तथा उचित है?–सुभाष कुमार विद्रोही

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती –कितनी क्रांतियां आईं, जगत पर छाईं

और कपूर–सी विलीन भी हो गईं, कितने रक्त–रंजित विद्रोह हुए और मिटे, कितने क्रांतिकारी जन्मे और मिट्टी में मिल गए। दुनिया जैसी थी, वैसी की वैसी है। राजनीतिक व औद्योगिक क्रांतियां हो गईं, आर्थिक व समाजिक क्रांतियां हो गईं, वैज्ञानिक व शैक्षिक क्रांतियां हो गईं; पिछले दो सौ वर्षों में क्या–क्या उलटफेर नहीं हुआ! मगर दुनिया का दुख नहीं मिटा, सो नहीं मिटा। विकास के दौर में शायद दुख भी बढ़ गया! आतंकवाद फैलता जाता है, युद्ध और भयानक हुआ जाता है, हिंसा एवं गंदी राजनीति की जड़ें पनपती ही चली जाती हैं।

बस...आशावादियों को हमेशा यूं लगता है कि मानवजाति में अब कुछ खास परिवर्तन होने वाला है, कल्पनाशील कविगण कविताएं लिखते हैं कि सत्यं शिवु सुंदरं, शुभ ही शुभ घटने वाला है। अब सर्वत्र उजाला ही उजाला हो जायेगा, अंधियारा सदा के लिए मिट जाएगा। सुभाष कुमार, मैं निराशावादी नहीं हूं, आशावादी भी नहीं हूं, यथार्थवादी हूं और तुम्हें तथ्य से अवगत कराना चाहता हूँ–पिछले पाँच हजार साल का ज्ञात इतिहास पर्याप्त प्रमाण है कि सारी क्रांतियां असफल हो गईं तथा आदमी का दुख और–और सघन होता चला गया है।

बद-से-बदतर दिन बीतेगा, अब सारा का सारा;
सूरज निकला इस बार भी किंतु फिर अंधा-आवारा।
मौसम में कुछ फर्क नहीं है, ऋतुओं में बदलाव नहीं,
मधुमासों की आवभगत का, कोई भी प्रस्ताव नहीं;
वैसा का वैसा है पतझर, वही हवा की मक्कारी,
तापमान का तर्क वही है, वही घुटन है हत्यारी;
बड़े मजे से नाच रहा है, फिर वो ही अंधियारा।
सूरज निकला इस बार भी किंतु फिर अंधा-आवारा।
शोक-गीत में बदल रही है धीरे-धीरे लोरी,
उसने गले में फंदा डाला, ये खींचेगी डोरी;
अब जीवन की शर्त यही है, जैसे-तैसे जी लो,
आँख मूँदकर सारा गुस्सा, एक सांस में पी लो;
नभ-गंगा निस्तेज पड़ी है रोता है ध्रुव तारा,
सूरज निकला इस बार भी किंतु फिर अंधा-आवारा।
किरण-किरण आरोप लगाती, दिशा-दिशा है रोती,
पछतावे का पार नहीं है, असफल हुई मनौती;
लगता है परिवेश समूचा खुद को हार गया है,
लगता है गर्भस्थ स्वप्न को लकवा मार गया है;
पिण्ड न जाने कब छोड़ेगा यह दुर्भाग्य हमारा?
सूरज निकला इस बार भी किंतु फिर अंधा-आवारा।

अगर यही है मुक्त हवा, तो इससे मुक्ति दिलाओ,
मुक्ति व्यर्थ बदनाम नहीं हो, अपने को समझाओ;
इससे तो बंधन अच्छा था, कहने लगीं हवाएं,
जी करता है इस जीने से, बेहतर है मर जाएं;
पता नहीं कल को क्या होगा, मेरा और तुम्हारा?
सूरज निकला इस बार भी किंतु फिर अंधा-आवारा।
आधा जीवन कटा रेत में, शेष कटे कीचड़ में,
और पीढ़ियां रहें भटकती, नारों के बीहड़ में;
दुष्चरित्र हो जाएं अगर, नैया के खेवनहारे,
तो गंगा हो या वैतरणी प्रभु ही पार उतारे!
नया फैसला करना होगा, शायद हमें दोबारा,
सूरज निकला इस बार भी किंतु फिर अंधा-आवारा।

कितनी क्रांतियां तो हो चुकी, कहीं कुछ बदला? जरा चिंतन-मनन करो—नया फैसला करना होगा, शायद हमें दोबारा! थोड़े पुनर्विचार की आवश्यकता है—अगर यही है मुक्त हवा तो इससे मुक्ति दिलाओ! बारंबार स्वतंत्रता के नाम पर नई बेड़ियां ढाली जा चुकी हैं—पहले से भी अधिक मजबूत गुलामियां...जी करता है इस जीने से, बेहतर है मर जाओ!!

तुम क्या सोचते हो जिस आदर्श रामराज्य की बात कर रहे हो, उस तथाकथित सतयुग में परेशानियां न थीं? जहां स्वयं

भगवान राम की पूज्य माताजी अपने बूढ़े पति-परमेश्वर को फुसलाकर पुत्र को 14 साल के लिए अन्यायपूर्ण वनवास दिला देती हैं; जहां खुद राम की पत्नी चोरी चली जाती हैं, इतनी भी सुव्यवस्था और सामाजिक सुरक्षा न थी; रामराज्य खाक रामराज्य था! राम के सिंहासन-आरूढ़ होने के पश्चात भी पुनः बेचारी सीता को वनवास की सजा मिल जाती है। कम से कम सुभाष विद्रोही जी, तुम्हारी पत्नी तो तुम्हारे घर में मौजूद है ना! तुम्हारे माता-पिता ने अभी तक जंगल भी नहीं भेजा ना!

कोई प्रमाण नहीं हैं कि पुराना जमाना अच्छा था। सिर्फ हमारा मन ऐसा सोचता है...वह भी हमारे मन का बहलावा है। या तो हम सोचते हैं कि पहले सतयुग था, या कुछ लोग सोचते हैं कि आदर्श स्थिति भविष्य में आयेगी। सतयुग अब आने वाला है; क्रांति करो, विद्रोह करो, व्यवस्था को बदलो। लेकिन मैं आपसे कहता हूं दुनिया में समस्याएं सदा थीं, आज भी हैं और सदा रहेंगी। ना तो अतीत के गुणगान करो, ना भविष्य के सुनहरे दिवा-स्वप्न देखो। ना परंपरावादी बनो, ना परिवर्तनवादी; वरन वर्तमानवादी बनो। जिसे गोविन्द के गुण गाने हैं, उसे आज ही गाने होंगे। जिसे ध्यान में डूबना है, उसे आज ही डूबना होगा। इन्तजार मत करना कि जब सारी

समस्याएं सुलझ जाएंगी तब तुम समाधिस्थ होओगे। मैं तुमसे कहना चाहता हूं, समस्याओं का समाधान ही समाधि में है। समाधि यानी समाधान। समाधि से ही समाधान होता है और तुम कह रहे हो कि जब तक समाधान न हो जाए हम समाधि वगैरह न करेंगे। यह तो ऐसा ही हुआ जैसे कोई कहे कि जब तक स्वस्थ न हो जाएंगे तब तक औषधि न लेंगे।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन के मित्र चंदूलाल ने पूछा–'कल आप अस्पताल जाने वाले थे फिर गए क्यों नहीं? मैं वहां दो घंटे आपकी प्रतीक्षा करता रहा।'

मुल्ला बोला–'आज जरूर चला जाऊंगा, कल मेरी तबियत जरा मुनासिब नहीं थी।'

तुम कह रहे हो कि जब तक बाहर की परिस्थिति न बदल जाए हम कैसे ध्यान में डूबें? अपनी शांति की तलाश कैसे करें? क्या वह स्वार्थ-साधना नहीं होगी? मैं तुमसे कहता हूं कि जब तक तुम शांति की तलाश न करोगे तब तक बाहर की परिस्थितियां भी न बदल सकेंगी। हां, एक दिन हम उम्मीद कर सकते हैं कि बहुत लोग ध्यानस्थ हो जाएं, तो उससे आएगा प्रेमभाव, भाईचारा, मैत्री की भावना, अहिंसा, अपरिग्रह, अलोभ। उस दिन विदा हो सकेंगे उग्रवाद और आतंकवाद।

ध्यान से आएगी सरलता, साधुता, सहजता, निर्मलता। उस दिन मिट सकेगी चलाकी, शोषण–वृत्ति और राजनीति। उससे पहले संभव नहीं। ध्यान से आएंगे मानसिक व हार्दिक परिवर्तन; कोमलता, दया, करुणा, ममता व समदृष्टि जन्मेगी। ध्यान से आएगा जीवन में आनन्द और उत्सव, लीला भाव, सृजनात्मक जीने का ढंग; तब निश्चितरूपेण कुछ हो सकेगा। एक–एक व्यक्ति की आत्मा यदि परिवर्तित हो जाए तो शायद किसी दिन दुनिया भी बदल जाए। उसी को मैं कहता हूं धार्मिक क्रांति। लेकिन अगर तुम दुनिया को बदलने चले तो न तो दुनिया बदलेगी न तुम बदल पाओगे। कितने समाज–सुधारक आए और गए। दुनिया कहां बदली? अक्सर उल्टा ही होता है, जो पहले समाज–सुधारक के रूप में आते हैं, सेवा करने के नाम पर क्रमशः एक दिन सत्ता में पहुंच जाते हैं–लैनिन, स्टैलिन, माओ और हिटलर–चले थे समाज को सुधारने, फिर वे खुद इतने बिगड़ जाते हैं कि समाज को उन्हें सुधारने की जरूरत पड़ती है।

अब थोड़ा जागो, चेतो, बहुत क्रांतियां हो चुकीं। सिर्फ एक प्रयोग करने को बाकी रह गया है। वह प्रयोग है आध्यात्मिक क्रांति का। एक स्प्रिच्युअल रिवोल्यूशन हो, उसी

से कुछ उम्मीद है। बाकी सब प्रयोग असफल हो चुके।

एक बाहरी स्वतंत्रता है जो हम दूसरे से प्राप्त करते हैं। याद रखना, मैं उसके खिलाफ नहीं हूं। वह होनी चाहिए, अच्छी बात है। लेकिन असली स्वतंत्रता है अहंकार से मुक्ति, स्वयं से स्वतंत्रता। नॉट फ्रीडम फ्रॉम दि अदर, बट फ्रीडम फ्रॉम दि सेल्फ। धर्म की भाषा में हम उसे ही मोक्ष, असली मुक्ति कहते हैं; वह स्वयं से मुक्त हो जाना है। अपने अहंकार के कारागृह से बाहर निकलना है। बाहर की स्वतंत्रता व सुव्यवस्था भी होनी चाहिए, जितनी हो सके! लेकिन तुम्हारा जीवन छोटा-सा है, पता नहीं हो पाएगी, नहीं हो पाएगी? तुम पहले अपने भीतर की स्वतंत्रता तलाश लेना। आंतरिक राज-पाट ठीक कर लेना, वही राजयोग है। तुम क्या सोचते हो बुद्ध के जमाने में आतंक नहीं था? खुद बुद्ध का भाई देवदत्त उसके मारने के कितने प्रयास करता रहा! तुम क्या सोचते हो ईसा मसीह के दिन लोग हिंसक, उग्रवादी नहीं थे? वरना उन्हें सूली पर कौन चढ़ाता! तुम क्या सोचते हो महावीर या कृष्ण के जमाने में लोग भले-मानुष थे? इतिहास उठाकर पढ़ो। सारी मनुष्य जाति का खूंखार अतीत, जंगली पाशविक प्रवृत्तियों की कथा है। पढ़ने

योग्य भी नहीं है। हमारा पूरा इतिहास शर्मनाक, लज्जास्पद है।

बाहर की समस्याएं रहेंगी। हां, ज्यादा से ज्यादा 'रिप्लेशमेंट' हो जाएगा। एक समस्या दूर करोगे, दूसरी आ जाएगी। कभी हम गोरे लोगों के गुलाम थे। अब हम अपने ही जैसे गेंहुआ रंग की त्वचा वाले लोगों के गुलाम हैं। इससे तुम्हें सांत्वना मिल जाए तो ठीक कि चलो अपना ही रंग है। पर गुलामी तो वही की वही है। कुछ गिने-चुने लोगों के हाथ में सत्ता पहले भी थी, कुछ थोड़े-से लोगों के हाथ में आज भी शक्ति है। जनता के लिए तो कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता।

विद्रोहीजी, एक विद्रोह है जो भीतर करना होता है। अपने ही मन की धारणाओं से, अपनी मान्यताओं से मुक्त होना है; अपनी अंधविश्वासों की जंजीरों को तोड़ना होता है। खुद के विचारों के कारागृह से बाहर निकलना होता है। असली आतंकवादी है 'अहंकार' जो तुम्हारे भीतर बैठा है उससे मुक्ति पानी है। तब जाकर एक आध्यात्मिक क्रांति घटित होती है। शांति और समाधि मिलती है। तुम पूछते हो अभी कैसे परमात्मा के भजन करें, फिलहाल कैसे गोविन्द के गुण गायें? मैं कहता हूं -इसीलिए कि एक इमरजैंसी सिचुयेशन, एक आपातकालीन स्थिति, संक्रमण काल से हम गुजर रहे हैं। यदि बहुत लोग शांत

न हो पाए तो शीघ्र ही तृतीय विश्वयुद्ध की विभीषिका से कोई न बचा सकेगा। ओशो कहते हैं कि अगर हजारों लोग शांत और समाधिस्थ हो जाएं, बुद्धत्व को पा लें तो ही तीसरा...जो कि संभवतः अंतिम युद्ध होगा...उससे हम बच पाएंगे, अन्यथा नहीं।

ओशो ने कहा है कि इक्कीसवीं सदी या तो युद्धों की सदी होगी या बुद्धों की सदी होगी। और चुनाव हमारे हाथ में है। एक प्रवचन में ओशो ने राजनीति और धर्म की संक्षिप्त परिभाषा इस प्रकार समझाई है—राजनीति यानि दूसरों को बदलने की कोशिश, परिस्थितियां सुधारने का प्रयत्न; और धर्म यानि आत्म-रूपांतरण का उपाय। वह उपाय ध्यान, समाधि, स्वयं को परिवर्तित करने की विधि है। और मनुष्य के लिए केवल यही एक प्रयोग करने को शेष रह गया है। एक-एक व्यक्ति शांत होता चले तो किसी दिन हम आशा और उम्मीद कर सकते हैं कि समाज भी शांत हो सकेगा। कुछ समाज शांत हो जाएं तो देश शांत हो सकेगा। कुछ देश शांत होने लगें तो शायद अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी विश्व-शांति पैदा हो सके।

विद्रोह और क्रांति की बातें छोड़ो, बाहर की परिस्थितियों को बदलने की कोशिश सदा नाकामयाब रही है। कभी सफल नहीं होगी। आत्म-रूपांतरण से गुजरो उसी के लिए

मैं आपको एक आध्यात्मिक क्रांति से गुजरने हेतु निमंत्रण देता हूं। आओ हम स्वयं को बदलें, ध्यान में डूबें। शांत होकर आत्मा को, आत्मा के केन्द्र परमात्मा को जानें। परमगुरु ओशो की कृपा से आज समाधि-साधना जितनी आसान हो गई है उतनी कभी नहीं रही। अगला सवाल भी इसी से संबंधित है।

व्यस्त जिंदगी में प्रभु की खोज

दूसरा प्रश्न- हम जीवन में वैसे ही इतने व्यस्त है दृश्य जगत की खोज क्या अदृश्य परमात्मा की खोज से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं? प्रभु की खोज की आवश्यकता ही क्या है? ...वेदप्रकाश

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती –यह सवाल ऐसे है जैसे कोई पूछे कि वृक्ष में जड़ें तो दिखाई नहीं देतीं फिर उनका इतना महत्व क्यों माना जाता है? जड़ ही आधार है, प्राण है वृक्ष का। पत्तें हों, ना हों कुछ फर्क नहीं पड़ता। अभी थोड़े दिन पहले पतझड़ की ऋतु थी। सारे वृक्ष नग्न खड़े थे, सब पत्ते झड़ गए, फूल नहीं बचे थे

लेकिन जड़ें सुरक्षित थीं, इसलिए फिर अभी वसंत आ गया। कोंपलें खिल गईं। फूल मुस्कुराने लगे, पुनः सुवास उड़ने लगी। यदि जड़ें नष्ट हो जाएं तब वृक्ष के दुबारा पनपने की सम्भावना नहीं बचती। वृक्ष का जो हिस्सा दृश्य है, वह ऊपरी-ऊपरी, सतह पर है। वह कम महत्व का है प्रकृति की नजर में, जड़ें ज्यादा महत्वपूर्ण हैं और इसीलिए जड़ों को छिपाया गया है। निसर्ग ने व्यवस्था की है; जो महत्वपूर्ण है उसे बचाया जाए, उसे सुरक्षित व अदृश्य रखा जाए। शाखाओं को तो बन्दर तोड़ सकते हैं, फलों को पक्षी खा जाएंगे, पत्तियों को भेड़-बकरियाँ चर जाएंगी। जड़ें महत्वपूर्ण हैं। उनको प्रकृति ने अन्धकार में छिपा दिया है।

मत पूछो कि प्रभु की खोज की आवश्यकता और महत्त्व क्या है? जो दिखाई नहीं देता, वही ज्यादा महत्वपूर्ण है। हमेशा स्मरण रखना अदृश्य ज्यादा महत्वपूर्ण है दृश्य की तुलना में। परमाणु को खोजकर हमने पदार्थ के अदृश्य हिस्से को खोजा और अद्‌भुत घटना घटी। उस सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु में विराट शक्ति छिपी हुई मिली। पहले जो बड़े-बड़े हथियार बने थे, परमाणु बम निर्माण के पश्चात् वे सब फीके और बचकाने, बच्चों के खिलौने हो गए। एक अदृश्य परमाणु में

इतनी शक्ति मौजूद है! हाथी का शरीर इतना बड़ा है पर याद रखना कोई बैक्टीरिया या माइक्रोस्कोपिक वाइरस के रोगाणु उसके शरीर में प्रवेश करके उसे नष्ट कर देते हैं। इतना विशालकाय हाथी हार जाएगा और वह अदृश्य वाइरस जीत जाएगा। स्थूल के मुकाबले सूक्ष्म महाशक्तिशाली है।

मेडिकल साइंस ने इतनी प्रगति कर ली। अभी तक वाइरस को मारने वाली दवाइयाँ नहीं बन पाई। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव है। उससे छोटा और कुछ भी अभी तक नहीं खोज पाए। जो सूक्ष्म व अदृश्य है; वह ज्यादा महत्वपूर्ण है। और परमात्मा सर्वाधिक सूक्ष्म है, अगम और अगोचर, अदृश्य है और इसीलिए वह महत्वपूर्ण है। वही इस दृश्य जगत का आधार है। उपनिषद के ऋषि दो शब्दों का प्रयोग करते हैं। संभूत ब्रह्म और असंभूत ब्रह्म; अर्थात् प्रकट और अप्रकट ब्रह्म। जो प्रकट है, वह अप्रकट के ऊपर आधारित है। देखें, इस ओशो-मंदिर में हम बैठे हुए हैं, ओशो-मंदिर के स्तम्भ दिखाई देते हैं, दीवालें दिखती हैं, खिड़की-दरवाजे दिखाई देते हैं। खुबसूरत छत दिखाई देती, परदे दिखाई पड़ते। लेकिन जिस बुनियाद पर यह मंदिर खड़ा है, वह बुनियाद नहीं दिखाई पड़ती और आप भली-भांति जानते हैं-खम्बों, दीवालों और छतों से ज्यादा महत्वपूर्ण वह नींव है,

जो दिखाई नहीं पड़ती। उस पर ही यह भवन खड़ा हुआ है। इसलिए परमात्मा की खोज ज्यादा महत्वपूर्ण है दृश्य की बजाय। अध्यात्म अधिक महत्वपूर्ण है विज्ञान की तुलना में। दृश्य का महत्व नम्बर दो पर आता है। और केवल परमात्मा ही नहीं, जीवन में जो भी अदृश्य है वह महत्वपूर्ण है। प्रेम दिखाई नहीं पड़ता। बुद्धि दिखाई नहीं पड़ती, प्रतिभा दिखाई नहीं पड़ती, विचार दिखाई नहीं पड़ते, करुणा दिखाई नहीं पड़ती। जो दिखाई पड़ता है वो है कृत्य। लेकिन याद रखना, कृत्य तो झूठा भी हो सकता है। नाटक का अभिनेता भी प्रेम, क्रोध, करुणा, दु:ख आदि भावों को अपने शरीर और चेहरे से व्यक्त कर देता है। जबकि वे भाव वास्तव में उसके भीतर नहीं होते। कर्म से तो हम धोखा खा सकते हैं। भाव अदृश्य है, और वही सत्य है। विचार अदृश्य हैं, लेकिन उन्हीं विचारों से सारा जीवन चल रहा है। हमारी प्राण ऊर्जा, भाव एवं विचार से भी ज्यादा सूक्ष्म है। सम्भवत: विज्ञान और ज्यादा उन्नति करके भाव एवं विचार पकड़ने की मशीन तो किसी दिन बना लेगा; लेकिन वह जो हमारी जीवन ऊर्जा है, हमारी चेतना है, हमारी कान्शियसनैस, उसे मापने का कोई उपाय सम्भव नहीं है। चेतना के आधार पर ही यह जड़ दिखाई पड़ने वाला जगत चल

रहा है। इसलिए चेतना की अदृश्य चरमावस्था अर्थात परमात्मा की खोज दृश्य जगत की खोज से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। विज्ञान से ज्यादा महत्वपूर्ण धर्म है। धर्म है चेतना का विज्ञान।

जादू का खिलौना

तीसरा प्रश्न– दुनिया में सब कुछ पा लेने के बाद भी मैं स्वयं से अतृप्त हूं। लोग मुझे सफल व्यक्ति मानते हैं। मगर मैं भीतर ही भीतर अपने आप को असफल जानता हूं। मेरी मानसिक असंतुष्टि का कारण क्या है? यह भी मुझे स्पष्ट नहीं है। एक खालीपन सा लगता रहता है, मेरी समस्या कैसे हल होगी?

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती - ओम प्रकाश शर्मा, तुम सौभाग्यशाली हो कि बाहर की सफलताएं जुटाने के बावजूद भीतर के खालीपन को, शून्यता को महसूस कर पा रहे हो। इसे दुर्भाग्य मत समझना। यह सौभाग्य की घड़ी है। यहीं से क्रांति की शुरुआत होती है। संसार की तरफ दौड़ती हुई वह जो बहर्मुखी चेतना थी, वह पहली बार भीतर की तरफ मुड़ती है। इसलिए अक्सर अमीर समाज धार्मिक हो पाते हैं, गरीब समाज धार्मिक नहीं हो पाते। जिसको भरपेट रोटी नहीं मिल पाई, जिसके पास रहने के लिए ठीक मकान नहीं है, वह सोचता है कि जिस दिन ठीक मकान बन जाएगा उस दिन मैं संतुष्ट हो जाऊंगा। अभी मेरे पास पहनने को अच्छे कपड़े नहीं हैं, या बच्चों को ठीक शिक्षा नहीं दिला पा रहा हूं, इसलिए तकलीफ में हूं। जिस दिन सुख-सुविधा के सारे इंतजाम कर लूंगा उस दिन मैं बहुत आनंदित होकर मस्ती व शांति में जीऊंगा।

यह तो अमीर होकर पता चलता है कि बाहर की सब व्यवस्थाएं भी सुचारू रूप से चलने लगें, तो भी शांति नहीं

मिलती। सुविधा एक बात है, शांति बिल्कुल दूसरी बात है। सुख के साधन जुटाना एक बात है, आनंद की साधना एकदम अलग बात है। मकान के बड़े हो जाने से कोई आंतरिक विराटता की अनुभूति नहीं हो जाएगी। जो झोपड़ी में चिंतित था, वह महल में भी परेशान रहेगा। जो अशांत आदमी पहले बैलगाड़ी चलाता था, वही अशांत आदमी अब कार चलाने लगेगा। वह अशांत आदमी अपोलो यान चलाने लगे तो भी अशांति नहीं मिट जाएगी। हां! बैलगाड़ी की जगह अपोलो यान आ गया लेकिन आदमी तो वही का वही है– बेचैन, महत्वाकांक्षी, प्रतियोगी चित्त वाला। उसकी चेतना में तो कुछ परिवर्तन हुआ ही नहीं।

परिस्थिति की बदलाहट से आत्म-रूपांतरण नहीं होता। लेकिन यह तथ्य भी समृद्ध होकर ही पता चलता है। धनी होकर ज्ञात होता है कि निर्धनता नहीं मिटी। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है, कि जो लोग बहुत समृद्ध हुए उनके जीवन में आध्यात्मिक क्रांति घटी। महावीर और जैनों के चौबीसों तीर्थंकर, गौतम बुद्ध, राजा जनक, राम और कृष्ण; ये सारे लोग राजघरानों से क्यों आते हैं? क्योंकि महल में रहकर ही पता चलता है कि महल तृप्ति नही दे सकता। गरीब आदमी तो आशा और विश्वास में जीता है कि कल समस्याएं हल जो जाएंगी।

समृद्ध व्यक्ति को पता चलता है कि बाहर की सम्पन्नता मेरे भीतर की विपन्नता को नहीं मिटा सकती। बाहर मैं कितना ही सामान एकत्रित कर लूं, कितना ही बड़ा बैंक बैलेंस इकट्ठा कर लूं, बाहर की संपदा मेरे मन की विपदा को समाप्त नहीं कर सकती। वह खालीपन ज्यों का त्यों मौजूद रहता है। तब बड़ी विडंबना की स्थिति निर्मित होती है—यह भी साफ पता नहीं चलता कि हम क्या करें? क्या तलाशें? आखिर पाना क्या है?

तुमने पूछा है कि 'मेरे मानसिक असंतुष्टि का कारण क्या है? यह भी मुझे स्पष्ट नहीं।' वास्तव में हम क्या चाह रहे हैं—यह भी स्पष्ट नहीं। हम क्यों चाह रहे हैं—कुछ समझ नहीं आता। जो-जो चाहा जा सकता था, वह उपलब्ध हो गया, दुनिया की नजरों में सफल हो गये, और फिर भी कुछ चाहत बनी हुई है। साफ-सुथरी नहीं, समझ भी नहीं आ रही।

मा ओशो प्रिया कि लिखी एक गजल तुम्हें सुनाऊं—

जाने किसकी तलाश जारी है,
क्या खूब ख्वाहिश हमारी है?
किसी सिंदूर से कभी न भरी,
मांग की मांग सदा क्वारी है।।

इस बड़ी दुनिया में जिससे भी मिले,

वही इंसान एक भिखारी है।

भरी कितनी मगर ये खाली रही,

दिल तो एक जादू की पिटारी है।।

नशा-ए-जुस्तजू में चलती हुई,

चुक गई जिंदगी बेचारी है।

पैर तो थक के चूर-चूर हुए,

आई नहीं हसरतों की बारी है।।

वह जो मांगने वाला चित्त है, उसकी मांग कभी भरती ही नहीं, किसी सिंदूर से नहीं भरती। झोली खाली की खाली रहती है-किसी सिंदूर से कभी न भरी, मांग की मांग सदा कुंवारी है।

जाने किसकी तलाश जारी है,

क्या खूब ख्वाइश हमारी है।

ठस बड़ी दुनिया में जिससे भी मिले,

वही इंसान एक भिखारी है।

....कोई छोटा भिखारी, कोई बड़ा भिखारी। छोटे भिखारी एक-दो रुपये मांगते हैं, बड़े भिखारी लाखों-करोड़ों

मांग रहे हैं। भिखमंगे सब हैं– बड़े–बड़े सिंकदर और हिटलर भी; बड़े–बड़े सम्राट, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति भी।

मैंने सुना है कि एक प्रेमिका ने अखबार पढ़ते हुए अपने सम्पन्न प्रेमी को खबर सुनायी–"एक दरिद्र आदमी ने साईकिल के बदले अपनी प्रेमिका को बेच डाला। क्या तुम भी मेरे साथ ऐसा नीचतापूर्ण कृत्य कर सकते हो?"

अमीर प्रेमी बोला–"नहीं, कभी नहीं। मैं उस जैसा धूर्त नहीं, जो साईकिल के बदले अपनी प्रेमिका को बेच दे। मेरे प्राणों से भी प्यारी, कार से कम पर तो मैं बात ही नहीं करूंगा।"

इस बड़ी दुनिया में जिससे भी मिले,
वहीं इंसान एक भिखारी है।
भरी कितनी मगर ये खाली रही,
दिल तो एक जादू की पिटारी है।
नशा–ए–जुस्तजू में चलती हुई,
चुक गई जिंदगी बेचारी है।
पैर तो थक के चूर–चूर हुए,
आई नहीं हसरतों की बारी है।

इस जादू की पिटारी का चमत्कार देखो- दिल की हसरतें चुकती ही नहीं। पैर थक जाते हैं, अरमान नहीं थकते। उम्मीदें पूरी नहीं होतीं, आदमी पूरा हो जाता है, समाप्त हो जाता है। इच्छाएं खत्म होने के पहले ही लोग खत्म हो जाते हैं। जिसे यह समझ आ जाए, उसके जीवन में भीतर की तरफ मुड़ना घटित होता है। प्रज्ञावान व्यक्ति की जिंदगी में ही अंतर्यात्रा आरंभ होती है। परमगुरु ओशो द्वारा कही गई एक बड़ी प्यारी बोध–कथा सुनो–

एक भिखारी सुबह–सुबह सम्राट के द्वार पर पहुंचा। विचित्र–सा भिक्षापात्र उसके हाथ में था। उसने सम्राट से कहा सिर्फ एक शर्त पर मैं भीख स्वीकार करूंगा–यदि आप मुझे आश्वासन दें कि मेरे भिक्षापात्र को पूरा का पूरा भर देंगे। सम्राट को हंसी आ गई, उसने कहा–तुम शायद पहली बार राजमहल आए हो। मैं तुम्हारे भिक्षापात्र को अनाज से क्या, हीरे–जवाहरातों से भर सकता हूं। भिखारी ने कहा कि एक बार आप फिर सोच लीजिए। अगर वचन दिया है तो फिर पूरा करना पड़ेगा, मैं हटूंगा नहीं यहां से जब तक कि पात्र भर न जाए। सम्राट ने अपने वजीरों को आज्ञा दी–जाओ हीरे–जवाहरत लाओ, और इसके भिक्षापात्र में डालो। यह गरीब भी आज जरा

प्रसन्न और चकित हो जाए। आज इसे अन-अपेक्षित मिल जाए!

वह भिखारी व्यंग्यात्मक रूप से मुस्कुराया।

हीरे-जवाहरात लाए गये, उसके पात्र में डाले गये। लेकिन एक विचित्र घटना घटी, रत्नादि डालते ही सब गायब हो गये। पात्र खाली का खाली रह गया! लेकिन सम्राट के अहंकार को चोट लग गई। वचन दिया था कि पूरा भरूंगा..... और हीरे-जवाहरात बुलवाए गये..... होते-होते दोपहर तक राजमहल के खजाने खाली होने लगे। मणि-माणिक समाप्त। राजा ने कहा कोई बात नहीं, सोना-चांदी लाओ। यह मेरी इज्जत का सवाल है, मेरे द्वार से कभी कोई खाली नहीं गया। सोना-चांदी डाला जाना लगा, लेकिन वह भिक्षापात्र बड़ा विचित्र था, जो भी उसमें डालो, सब विलीन हो जाता।

शाम होते-होते सम्राट थक गया। भिखारी के चरणों में गिरकर रोने लगा कि यह कौन सा जादू है? यह कौन सा चमत्कार है? ये सारी चीजें कहां गायब हो गईं, कहां चली गईं?

भिखारी ने कहा चमत्कार कुछ भी नहीं, मैं तुम्हें बताता हूं कि यह भिक्षा पात्र मैंने कैसे बनाया है। एक दिन कब्रिस्तान से गुजर रहा था, वहां एक आदमी की खोपड़ी पड़ी मिल गई। मैंने उसे उठाकर, घिसकर साफ किया, उसी से यह

भिक्षापात्र बनाया। इसलिए देखने में थोड़ा अजीब-सा लगता है। मैं गरीब आदमी हूं। पीतल या तांबे के बर्तन खरीदने की भी मेरी हैसियत नहीं। उस खोपड़ी को ही घिसकर मैंने यह कटोरा-सा बना लिया है। इस कटोरी में कुछ भी डालो यह भरती ही नहीं।

सम्राट ने कहा यह तो बड़ी चमत्कारी खोपड़ी है।

भिखारी ने कहा : नहीं राजन्, यह चमत्कारी नहीं है। साधारण खोपड़ी है। दुनिया में कब किसकी खोपड़ी भरी है! आप आंख बंद करके अपनी खोपड़ी के भीतर देखो, क्या वह भर गई? सम्राट ने आंखें बंद कीं। भिखारी ने कहा, गौर से देखो-क्या तुम्हारे भीतर अभी भी भिखमंगापन नहीं है? क्या तुम नहीं चाहते कि तुम्हारा साम्राज्य और बड़ा हो, कि तुम्हारी सेनाएं और सशक्त हों, कि तुम्हारी विजय पताका और दूर-दूर तक फहराये, कि तुम्हारे राज्य की सीमाएं विस्तीर्ण हो जाएं?

सम्राट बोला- चाहता हूं, निश्चित रूप से चाहता हूं।

भिखारी ने हंसकर कहा- राजन्, फिर तुम्हारी खोपड़ी भी कहां भरी? भिक्षापात्र खाली का खाली है। जितना मेरा, उतना आपका, उतना ही संसार में सबका पात्र रिक्त है।

दुनिया जिसे कहते हैं, जादू का खिलौना है,
मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है।

...आपने सुना होगा यह प्रसिद्ध शेर, यहां जो मिल जाता है वही मिट्‌टी हो जाता है। असल में मिट्‌टी और सोने की परिभाषा ही कुल इतनी है कि सोना वह, जो अभी नहीं मिला, जिसका हम सपना संजोए बैठे हैं; और मिट्‌टी वह, जो हमारे पास है। जो भी मिले, मिलते ही सब राख हो जाता है। वह भीतर का भिखमंगापन, वह खालीपन खत्म ही नहीं होता।

तुम पूछते हो 'मैं क्या करूं? कैसे समस्या हल होगी? मेरी मानसिक असंतुष्टि का कारण क्या है?' यह भिखारी मन ही असंतुष्टि का कारण है। मन यानी असंतुष्टि का दूसरा नाम।

ओम प्रकाश शर्मा, तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें सुंदर नाम दिया है 'ओम प्रकाश' शायद उन्होंने सोचा नहीं होगा, तुमने भी नहीं सोचा होगा कि इसका अर्थ क्या है! जब तक तुम ओम् के प्रकाश को न जान लोगे, तब तक जीवन में आंतरिक भराव घटित नहीं होगा। ओम यानी 'परमात्मा की ध्वनि'..... अस्तित्व का महासंगीत, जो रोशनी से ओतप्रोत है। जब तक तुम परमात्मा के प्रकाशमय संगीत को न पहचानोगे, रिक्तता न मिटेगी। अभी हम मा ओशो प्रिया का गाया हुआ कीर्तन सुन रहे थे– 'ओम हूं, आनंद हूं, ब्रह्म सच्चिदानंद हूं'.....

सत्–चित्–आनंद तभी घटित होता है जब ब्रह्म के अनहद–नाद यानी 'ओंकार' में डुबकी लगती है। अपने भीतर ध्यान में डूबो। धीरे–धीरे ध्यान से समाधि की ओर यात्रा शुरु होगी। समाधि में ओम् की आवाज सुनाई पड़ेगी.... प्रभु के आगमन की पदचाप... और धीरे–धीरे पता चलेगा कि तुम्हारे अंतस का आकाश न केवल संगीत से भरा है, बल्कि प्रकाश से भी ओत–प्रोत है; तब तुम अपने नाम का अर्थ जानोगे। और तब तुम्हारे जीवन में परमानंद की वर्षा होगी। फिर यह खालीपन मिटेगा।

मैंने सुना है कि एक व्यक्ति 'काके दा होटल' नामक छोटे से ढाबे पर खाना खाने पहुँचा। खाने के बाद वाश–वेसिन पर जाकर 'खू, खाँ, आक–थू' खूब जोर–जोर से मुँह साफ करने लगा। आसपास खाते हुए लोगों का जी मितलाने लगा। उन्होंने शिकायत की तो मैनेजर ने आकर उस व्यक्ति से पूछा– 'आपने कभी किसी ढंग के होटल में खाना खाया है?' वह व्यक्ति बोला– 'हाँ, हयात् में, अशोका में, ओबराय में, ताज में, सबमें खाया है।' मैनेजर बोला– 'वहाँ जब आप ऐसा करते थे तो वे कुछ कहते नहीं थे?' वह व्यक्ति बोला– 'कहते थे, जरूर कहते थे। उन्हीं के कहने से तो मैं आपके ढाबे में यहां आया हूं। धक्के देकर बाहर निकालते हुए वे लोग कहते थे– 'उल्लू के

पट्ठे, नालायक, क्या तुने इसे 'काके दा होटल' समझा है?'

तुम्हारी खोपड़ी काके दा होटल है। तुम मन के हल्ले गुल्ले में इतने खोए हो कि अंतरात्मा की सूक्ष्म लयबद्धता को पकड़ ही नहीं पाते। तुम्हारी 'खू, खाँ, आक-थू' बंद हो, दिमागी शोरगुल समाप्त हो, तो प्रभु का संगीत सुनाई पड़े। वास्तव में भीतर खालीपन नहीं है, मगर तुम भीतर कभी गए ही नहीं। इस खोपड़ी के कोलाहल के पार, विचारों के जाल से परे, भावनाओं व वासनाओं के पीछे, जहां तुम्हारी चेतना है; उस आत्मा के केंद्र में परमात्मा का प्रणव-नाद ओम् के रूप में गूंज रहा है उसमें डुबकी मारो। फिर आंतरिक भराव का पता चलेगा। फिर यह शून्यता, पूर्णता में परिवर्तित हो जाएगी। और तब तुम भी गा सकोगे– 'ओम् हूं, आनंद हूं, ब्रह्म सच्चिदानंद हूं'। उस शून्य के स्वर के बारे में कुछ बताना बहुत कठिन है। उस निशब्द में गूंज रहे 'शब्द' को शब्दों से व्यक्त करना केवल कठिन नहीं, असंभव ही समझो। संकेत पकड़ो–

मुमकिन नहीं कि मौन का पर्दा उठा सकूं
जो बात राजे दिल की है होंठों पे ला सकूं।
क्या रंग है खुश्बू है, बिन मय के खुमारी है
चाहूं कि जामे मस्ती सभी को पिला सकूं।

कैसा तिलिस्म है तेरी महफिल के नूर में
जी भर के देखुं पर न जरा भी दिखा सकूं।
एक धुन सी उठ रही है मेरे दिल के साज पर
खुद सुन सकूं मगर न किसी को सुना सकूं।

कैसा तिलिस्म है तेरी महफिल के नूर में, जी भर के देखूं पर न जरा भी दिखा सकूं...उस प्रकाश को तुम देख लोगे मगर किसी का दिखा न सकोगे। चाहोगे वह अंतरात्मा की शराब सबको पिलाना, मगर पिला न सकोगे। अपने भीतर गूंजती भागवत गीता को, भगवान के गीत को सुनाने की अभीप्सा पैदा होगी, किंतु सुना न सकोगे। आत्मा का रहस्य शब्दों में ढाल न सकोगे। आज तक कोई नहीं ढाल पाया।

एक धुन सी उठ रही है मेरे दिल के साज पर,
खुद सुन सकूं मगर न किसी को सुना सकूं।
मुमकिन नहीं कि मौन का पर्दा उठा सकूं,
जो बात राजे-दिल की है ओठों पे ला सकूं।

वही राजे-दिल की बात तुमसे कहना चाहता हूं ओम प्रकाश। ध्यान में, समाधि में डूबो। अपने नाम को सार्थक करो।

फिर आनंद ही आनंद है। असली सफलता स्वयं के अंदर है। न केवल 'सफलता' बल्कि 'सुफलता' वहां तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। अंतर्यात्रा पर चलने हेतु नौ दिन का समय निकालकर ध्यान-समाधि कार्यक्रम में भाग लेने आओ। इस महायज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आपका आह्वान करता हूं।

वास्तविक धर्म क्या है?

पांचवां सवाल पूछा है श्री चेतन उपाध्याय ने– दुनियां में दर्जनों धर्म, सैकड़ों संप्रदाय, हजारों ग्रंथ, व लाखों गुरुओं की भीड़ है; जो सब परस्पर विपरीत बातें समझाते हैं। मेरे जैसा सामान्य व्यक्ति कैसे पहचाने कि वास्तविक धर्म क्या है?

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती–चेतन उपाध्याय, वास्तविक धर्म जीवन जीने की कला का नाम है। कैसे जीवन में सौदर्य व माधुर्य की वृद्धि हो, आनंद व शांति विकसित हो, कैसे तुम्हारे भीतर प्रफुल्लता के फूल खिलें, कैसे तुम ज्यादा करुणा से भरो, कैसे तुम ज्यादा मैत्री–भाव और मस्ती से भरो, सत्यं–शिवं–सुंदरम् से ओतप्रोत जीवन जीने की कला ही वास्तविक धर्म है। ये उसकी कसौटियां होंगी। देखना, क्या तुम जीवन के प्रति विधायक दृष्टिकोण से भर रहे हो। जिन्हें हम तथाकथित धर्म कहते हैं धर्मों की भीड़ कहते हैं, उनमें धर्म कम राजनीति ही ज्यादा है। उनमें से अधिकतर जीवन के प्रति बहुत ही नकारात्मक भाव से भरे हुए हैं। वे जीवन को और अधिक दुख से, कष्ट से, पीड़ा से भरते हैं। त्याग और तपस्या धर्म नहीं है। जीवन के प्रति संवेदनशीलता को बढ़ाना और ज्यादा चैतन्य होना है, सामान्य से ज्यादा जागरूक 'सुपरकौंसियस' होना है, ताकि जीवन का हम

पूर्णभोग कर सकें। धर्म त्याग नहीं, परमभोग है। साधारण से साधारण कर्म में भी हम परमानंद को उपलब्ध कर सकें, ऐसी कला का नाम वास्तविक धर्म है। तुम टटोलना, देखना अपने भीतर कि क्या वास्तविक धर्म में गति हो रही है? और बाहर जहां तुम खोज रहे हो कि सच्चा गुरु कौन है, तो ऐसे व्यक्ति को खोजना जो तुम्हें आनंदित, प्रेमपूर्ण, शांत, उत्सवमय जीवन जीने की कला सिखाये। जो कहे–

मुसीबत हंसी में उड़ाता गुजर जा,
खुशी के तराने सुनाता गुजर जा।
मुहब्बत के दरिया बहाता गुजर जा,
जमाने से गाजा-बजाता गुजर जा।

मजे जिंदगी के उठाता गुजर जा,
हंसते-हंसाते, मुस्कुराता गुजर जा।
खयालों की दुनिया जलाता गुजर जा,
जहां को समझ के तमाशा गुजर जा।

खुद ही खुदी को मिटाता गुजर जा,
आंखें खुदा पर टिकाता गुजर जा।

जीवन में मस्ती लुटाता गुजर जा,
सरे गम पे ठोकर लगाता गुजर जा।

जगता-संभलता, जगाता गुजर जा,
गुजर जा जमीं को नचाता गुजर जा।
मुसीबत हंसी में उड़ाता गुजर जा,
खुशी के तराने सुनाता गुजर जा।

वास्तविक धर्म का सूत्र तो यही होगा-'जगता, संभलता, जगाता गुजर जा'। खुद भी जागो और दूसरों को भी जगाओ। संभलो, मूर्च्छा के गड्ढे में फिर न गिरना। इतने जादा चैतन्य बनो कि तुम्हारा जीवन एक मुस्कान हो जाए। 'मोहब्बत के दरिया बहाता गुजर जा' यदि तुम्हारे जीवन में प्रेम की सरिता बहती हो, तो जानना तुम धार्मिक हो। यदि तुम रूखे-सूखे हो गए, त्यागी-तपस्वी हो गए, शास्त्रों के बोझ से लद गए, तो जानना वास्तविक धर्म नहीं घटा। धर्म यानि स्वभाव! और आनंद हमारा स्वभाव है। आनंद की कसौटी पर स्वयं को कसते रहना, शांति के थर्मामीटर से खुद की गहराई नापते रहना।

मैंने सुनी है एक चीनी कहानी, तीन हंसते हुए संतों

की, उनके कोई नाम नहीं जानता था, उन्होंने कभी अपना नाम

बताया नहीं। उनसे कुछ भी पूछो, वे हंसने लगते। एक गांव में थोड़े दिन ठहरते, हंसी की लहर चारों तरफ फैल जाती। फिर वे दूसरे गांव चले जाते, बीच बाजार में खड़े हो जाते और हंसने लगते। उन्होंने कभी किसी दार्शनिक सवाल का जवाब नही दिया। अट्टहास ही एकमात्र उनका उत्तर था। जहां वे खड़े हो जाएं, वहां मुस्कुराहट फैल जाए। उन तीन हंसते हुए संतों को देखकर भीड़ भी हंसने लगे। धीरे-धीरे पूरे गांव में एक हंसी की एक लहर फैल जाए। उनका नाम तो किसी को पता नहीं था, 'थ्री लाफिंग सेंट्स' तीन हसंते हुए संत वे कहलाते थे। कोई उपदेश उन्होंने कभी दिया नहीं। एक ही उनका संदेश था-'हंसो' वह भी उन्होंने शब्दों में नहीं कहा था, अपने जीवन में ढालकर बिना भाषा के अभिव्यक्त किया था।

फिर एक दिन ऐसा हुआ, वृद्धावस्था में एक संत की मृत्यु हो गयी। गांव के लोग बहुत उत्सुक थे कि आज तो निश्चित ही मृतक के शेष दो मित्र उदास, दुखी होंगे! वे गए उनकी झोंपड़ी पर, लेकिन देखा कि दो संत बाहर बैठे मुस्कुरा रहे हैं, हंस रहे हैं। और वे कहने लगे कि हमारा तीसरा मित्र हमसे आगे निकल गया। हमें हंसते हुए छोड़कर वह अकेला ही विदा हो गया। और उसने जाते-जाते एक वचन हमसे लिया है

कि जब मरघट पर उसकी चिता को जलाया जा रहा हो, तो उसके पहले जो रीति-रिवाज था कि लाश को नहलाया जाए, नये कपड़े पहनाएं जाएं; उसने मना किया है-'नहलाना मत, मुझे दूसरे कपड़े मत पहनाना, जो वस्त्र मैं पहने हुए हूं ऐसा ही मुझे श्मशान घाट ले जाना।' मरघट जाते हुए.... अर्थी ढोते हुए भी उसके दो मित्र हंसते रहे। धीरे-धीरे वे गांव के लोग जो शोक व्यक्त करने उदास चेहरे लिए आए थे, यहां शोक व्यक्त करने का मौका न देखकर वे भी धीरे-धीरे प्रसन्न हो गए। प्रसन्नता भी इन्फैक्सस होती है। जैसे संक्रामक बीमारियां फैलती हैं, वैसे ही खुशी भी फैलती है। सारा माहौल ही बदल गया, ऐसा नहीं लग रहा था कि किसी की मृत्यु में आए हैं, ऐसा लग रहा था जैस कोई उत्सव होने वाला है।

....और फिर बहुत अद्‌भुत घटना घटी। जब चिता में आग लगाई गई, तब अचानक फुलझड़ी-पटाखे चलने शुरू हो गए, वह जो आदमी मर गया था, वह अपने कपड़ों में फुलझड़ी पटाखे, अनारदाने छुपाकर मरा था। जब चिता से फुलझड़ियां छूटने लगीं, पटाखे फूटने लगे तब तो बहुत हंसी की तरंगें फैल गईं। उदास से उदास आदमी भी प्रसन्न हो गया। वे लोग कहने लगे अद्‌भुत था वह व्यक्ति जीते जी भी हमको हंसाता रहा,

और मृत्यु के बाद भी हमें हंसाने का उपाय कर गया है।

तुम पूछते हो चेतन उपाध्याय–कि कैसे पहचानें कि वास्तविक धर्म क्या है? जहां हंसी हो, खुशी हो, जहां प्रेम हो, आनंद हो, जहां मस्ती हो, वहां जानना की वास्तविक धर्म घट रहा है। जहां सद्‌गुरु मौजूद होते हैं वहां धर्म सदा जीवंत होता है। लेकिन अक्सर सद्‌गुरु के विदा होने के पश्चात फिर उदास, रुग्ण लोगों की भीड़ इकट्‌ठी हो जाती है। और वे मनोरोगी धर्म को एक नकारात्मक रूप दे देते हैं। फिर पंडित–पुरोहित इकट्‌ठे हो जाते हैं, वे शास्त्रों की व्याख्या करने लगते हैं; और बड़ा गंभीर माहौल निर्मित कर देते हैं। फिर वाद–विवाद, सिद्धांत, फिलॉसफी और संप्रदाय निर्मित हो जाते हैं। कट्‌टरपंथी लोग आ जाते हैं, और झगड़े–फसाद शुरू कर देते हैं। पहले तर्क फिर तलवारें...जल्दी ही लड़ाईयां, दंगे और युद्ध छिड़ जाते हैं।

जितने भी जागृत पुरुष हुए हैं, याद रखना उन्होंने तो सदा हमें आनंद के सूत्र दिए, लेकिन हमारी समाज व्यवस्था, संगठन प्रणाली, हमारी नासमझी, हमारी मूढ़ता कुछ ऐसी है, कि हम हर चीज में से दुख निकाल देते हैं। अमृत में से भी विष ढूंढ़ लेने में हमारी कुशलता का कोई मुकाबला नहीं है। इस बात के प्रति सजग होना, सावधान रहना।

तुम पूछते हो कि दुनियां में दर्जनों धर्म और सैकड़ों संप्रदाय हजारों ग्रंथ व लाखों गुरुओं की भीड़ है, जो सब परस्पर विरोधी बातें समझा रहे हैं, और मुझ जैसा सामान्य व्यक्ति कैसे पहचाने की वास्तविक धर्म क्या है?

मैं तुम्हें कसौटी दे रहा हूं पहचानने की। जहां दुख हो, पीड़ा हो, जहां त्याग की बाते हों, तपस्या का गुणगान हो, जहां उदासी आदृत हो, जहां हृदय में फूल न खिल पाते हों, बल्कि तुम्हारे सिर पर बोझ बढ़ जाए; वहां जानना कि वास्तविक धर्म नहीं है। बात कुछ भटक गई, रास्ता कुछ चूक गए। यह मार्ग परम मंजिल तक नहीं जा रहा क्योंकि परमात्मा तो सच्चिदानंद है। वह परम आनंद रूप है, तो उसकी तरफ जाने वाला मार्ग जिसे हम धर्म कहते हैं; वह भी प्रसन्नता से ओत-प्रोत होना ही चाहिए। तभी तो वह परमानंद तक पहुंचा सकेगा।

कोई साधु उपवास के नाम पर भूखा मर रहा है, या कोई महात्मा कांटों की सेज पर लेटा है, कि कोई दुष्ट अपने-आप को कोड़े मार रहा है, या कोई हिंसक अपने केश-लुंचन कर रहा है, अथवा अपनी घर-गृहस्थी व प्रियजनों को छोड़ जंगलों में भटक रहा है, यह आदमी कैसे परमानंद को उपलब्ध होगा? इसने तो जीवन के साधारण सुख भी छोड़ दिए।

यह तो साधारण संसारी से भी गई–बीती स्थिति में है। साधारण संसारी भी यदाकदा प्रसन्न दिखाई देता है। किंतु साधु–महात्माओं में विद्वानों, मुनि–महाराजों में प्रसन्न लोग ढूंढ़ने मुश्किल हैं।

....तो याद रखना, आनंद कसौटी है। और उस परमांनद को पाने का उपाय क्या है? दो ही उपाय हैं–'एक ध्यानयोग, दूसरा भक्तियोग।' या संक्षेप में कह लो– पहला होश और दूसरा प्रेम। एक तो है कि हम अपने अंदर कौंसेसनेश को इभाल्व करें, चैतन्य का विकास करें, भीतरी जागरूकता को प्रखर करें। और दूसरा मार्ग है कि हम अपने भीतर प्रेम को परिमार्जित करें। पुरुषों के लिए ध्यान मार्ग आसान पड़ेगा। स्त्रियों के लिए प्रेम मार्ग सुगम लगेगा। ध्यान अथवा योगमार्ग यानि होश की राह और प्रेम मार्ग यानि भक्ति की राह। जो तुम्हें सहज, सरल और सुगम लगता हो उस रास्ते पर चलो। अतंतः तो दोनों मिश्रित हो जाएंगे। तुम जितने होशपूर्ण होने लगोगे, उतने ही प्रेम और करुणा से भी भरने लगोगे। या इसका विपरीत भी सच है– जितने तुम प्रेमपूर्ण होने लगोगे, भक्ति भाव में जीने लगोगे; उतनी ही सूक्ष्म संवेदनशीलता, गहन जागरूकता तुम्हारे अंतस में उत्पन्न होने लगेगी। अंततः तो दोनों मिलकर एक हो जाएंगे। भेद केवल प्राथमिक, आरंभिक हैं।

प्रेम और होश दो मार्ग हैं, और मंजिल दोनों की एक है–'समाधि' अर्थात परमात्मा में डुबकी, ओंकार से मिलन, अहंकार का विसर्जन, अस्तित्व के साथ अद्वैत की प्रतीति।

दो मार्ग हैं, यानी दो साधन हैं; पर साध्य एक ही है, वह सत्–चित्–आनंद जो समाधि में जाना जाता है, उसकी तरफ बढ़ना है। और जो धर्म उस तरफ जाए उसे ही वास्तविक धर्म जानना। और ध्मरण रखना, धर्म बहुत नहीं होते जैसे विज्ञान एक है, वैसे ही धर्म भी एक है। ओशो ने एक बहुत प्यारा शब्द दिया है– धार्मिकता, रिलीजियसनेश। ओशो कहते हैं–'मैं धार्मिकता सिखाता हूं धर्म नहीं' ये जो विशेषण वाले धर्म हैं– हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी, जैन, बौद्ध, इत्यादि.... ज्यादा अच्छा हो कि हम इनकी जगह एक नया शब्द इस्तेमाल

करें 'धार्मिकता', यानि एक विशेषण रहित धर्म, बिना नाम का धर्म; सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् को जीवन में उतारने का प्रवाहमान विज्ञान होगा। वह जीवन को वर्तमान क्षण में जीने की शुद्ध कला होगी, न विगत का शोक, न भविष्य की चिंता। सुनो यह गीत-

जीवन प्रतिपल चलता है, जैसे झरना बहता है।
आगे की कोई आस नहीं, पीछे शोक न करता है।।

प्रतिक्षण मिलती नई जमीं, पर आकाश सनातन है।
बूंद समय में है बहती, धारा लेकिन शाश्वत है।
झरना झरकर कहता है, जीवन प्रतिपल चलता है।।

दुख के कैक्टस उगते हैं, विगत काल की क्यारी में।
सुख की कलियां खिलती हैं, आगत की फुलवारी में।।
आनंद सदा बरसता है, जीवन प्रतिपल चलता है।।

कुछ असार या सार नहीं, जीवन का श्रृंगार यही।
कुछ शाश्वत कुछ क्षणभंगुर, जीवन का आधार यही।।
अनहद बाजा बजता है, जीवन प्रतिपल चलता है।।

क्या पकड़ो क्या छोड़ागे, जड़ से चेतन पलता है।
शाश्वत की ही धूरी पर, समय का पहिया चलता है॥
भीतर दीपक जलता है, जीवन प्रतिपल चलता है॥
आगे की कोई आस नहीं, पीछे शोक न करता है।
झरना झरकर कहता है, आनंद सदा बरसता है।
अनहद बाजा बजता है, भीतर दीपक जलता है।

उस भीतर के प्रकाश को जानना, अनाहत नाद को सुनना, परमानंद की वर्षा में स्नान करना धर्म है।

धन्यवाद।